SURE SUCCESS
CIVIL SERVICES CLASSES
9334710148

शुरुआती दौर में ही तत्काल जांच एवं इलाज कराने की सलाह दे रहे हैं बीएचयू के डा.आरपी मौर्या



# ब्रेन में न फैले ब्लैक फंगस इसलिए निकालनी पड़ती है आंख

**डा. मौर्य बताते हैं कि ब्लैक फंगस (म्यूकर माइकोसिस) एक जानलेवा तथा तेजी से फैलने वाला संक्रमण है। साथ ही आर्बिटल एक्जेंट्रेशन जीवन रक्षक शल्यक्रिया है। इसके द्वारा ब्लैक फंगस संक्रमण को ब्रेन में फैलने से रोका जाता है। इसीलिए आंख निकालनी पड़ती है।**

वैश्विक महामारी कोरोना से ज्यादा लोग इन दिनों ब्लेक फंगस से परेशान हैं। कारण कि इसमें मरीज के शरीर की दुर्दशा हो जा रही है। कई बार तो आंख, जबड़ा, नाक आदि निकालने की नौबत आ जा रही है। ऐसे में आपको हर हाल में अंतिम स्टेज में जाने से बचना चाहिए। मामूली लक्षण भी दिखे तो तत्काल ब्लेक फंगस की जांच कराकर उपचार करा लें। इस संबंध में वाराणसी स्थित सर सुंदरलाल अस्पताल, बीएचयू स्थित क्षेत्रीय नेत्र संस्थान के कैंसर व आकुलोप्लास्टिक यूनिट के इंचार्ज एसोसिएट प्रोफेसर डा. आरपी मौर्या से बातचीत पर आधारित जागरण संवाददाता मुकेश चंद श्रीवास्तव की रिपोर्ट...

### कृत्रिम आर्बिटल प्रोस्थेसिस से कुछ सुधरेगी रोगियों की कुरूपता

डा. मौर्या बताते हैं कि ब्लैक फंगस के एडवांस स्टेज में शल्यक्रिया के बाद आंख व चेहरे की क्रियात्मक व रचनात्मक विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं। व्यथित विकलांग हो जाता है, मानसिक रूप से तनाव में रहने लगता है। ऐसे रोगियों की कुरूपता व रिक्त नेत्रगुहा छुपाने के लिए कई प्रकार के कृत्रिम 'आर्बिटल प्रोस्थेसिस (कृत्रिम अंग)' या 'आकुलोफेसियल प्रोस्थेसिस' को लगा देते हैं। आजकल चश्मे में ही प्रोस्थेसिस फिट का प्रचलन है।

### तीन तरीके से उपचार

**पहला** क्षतिग्रस्त (मृत उतकों) भाग का शल्य क्रिया द्वारा डेब्राइडमेंट (क्षत शोधन) करना

**दूसरा** एंटीफंगल (फफूंदी नाशक) दवाओं के सेवन से मरीज का उपचार

**तीसरा** रोग के कारक का पूर्ण नियंत्रण जैसे इंसुलिन या ओरल हाइपोग्लासेमिक दवाओं से ब्लड शुगर पर नियंत्रण

### फंगस ब्रेन में पहुंचने पर दोगुनी करनी पड़ती है दवा की मात्रा

डा. मौर्या ने बताया कि ब्लैक फंगस के मरीज को इंजेक्शन लाइपोसोमल एम्फोटेरेसिन-बी, जिसे पांच एमजी/केजी/प्रतिदिन पांच प्रतिशत डेक्स्ट्रोज में मिलाकर दो-तीन घंटे में दिया जाता है। यदि यह ब्रेन में पहुंच गया तो मात्रा दोगुना कर दी जाती है।

### वैकल्पिक भी है दवाएं

लाइपोसोमल एम्फोटेरेसिन-बी उपलब्ध नहीं होने पर इंजेक्शन एम्फोटेरेसिन-बीडी ऑक्सीकोलेट देते हैं। मगर इसके लिए 'सिरम क्रिएटीनीन' जांच अनिवार्य है। कारण कि यह गुर्दे को नुकसान पहुंचा सकती है। जिन रोगियों को एम्फोटेरेसिन की टालरेंट (बर्दाश्त) नहीं होता उनको 'पोसाकोनाजोल' टेबलेट दिया जा सकता है। इसकी उपलब्धता न होने पर 'इट्राकोनाजोल' टेबलेट दिया जा सकता है।

### ब्लैक फंगस के लक्षण

- नाक जाम होना और सांस लेने में दिक्कत।
- नाक से पीले या काले रंग का पानी आना।
- चेहरे पर सूजन होना।
- चेहरे में एक तरफ दर्द होना।
- आंखों में सूजन व रोशनी कम होना।
- नाक के चारों तरफ कालापन आना।
- सिर दर्द होना।
- अंत में शरीर में लकवा मारना।

### चेहरा व कपाल की हड्डियों को भी निकालना पड़ता है

डा. मौर्या ने बताया कि शल्य क्रिया की आवश्यकता फंगस के संक्रमण को बढ़ने से रोकने के लिए की जाती है। नेत्र गुहा विच्छेदन भी एक प्रकार की शल्यक्रिया है, जिसे नेत्रगुहा के जानलेवा कैंसर व ब्लैक फंगस के नेत्रगुहा में फैलने पर किया जाता है। इसमें नेत्रगुहा के अंदर के सभी भाग को निकाल दिया जाता है। इसके भी तीन प्रकार हैं। पहला आंशिक नेत्रगुहा विच्छेदन, दूसरा पूर्ण नेत्रगुहा विच्छेदन व तीसरे में नेत्रगुहा के साथ ही चेहरा, कपाल की हड्डियों को भी काटकर निकाला जाता है। इस प्रक्रिया में न्यूरो सर्जन एवं मैक्सीलो-फेशियल सर्जन की भी मदद ली जाती है। तीसरे प्रकार का ऑपरेशन एडवांस स्टेज में किया जाता है।

# ब्लैक फंगस की सुरक्षित दवा ढूंढ रहे डाक्टर

## उम्मीद ▸ लाइपोसोमल एम्फेटेरेसिन बी नहीं मिलने पर प्लेन एम्फेटेरेसिन बी से उपचार

### किडनी पर दुष्प्रभाव को देखते हुए प्लेन एम्फेटेरेसिन बी से बच रहे थे डाक्टर, पोसाकोनाजोल का भी देख रहे असर

**जागरण संवाददाता, पटना**

कोरोना संक्रमण के बाद अब ब्लैक फंगस (म्यूकोर माइकोसिस) डॉक्टरों के लिए बड़ी परेशानी का सबब बन गया है। पहले रेमडेसिविर और टॉक्सलीजुमैप और अब ब्लैक फंगस के गंभीर रोगियों के उपचार की सबसे सुरक्षित व प्रभावी 'लाइपोसोमल एम्फेटेरेसिन बी' इंजेक्शन से परेशानी है। इससे किडनी पर होने वाले दुष्प्रभाव को देखते हुए चिकित्सक विकल्प की तलाश कर रहे हैं।

सरकार दवा उपलब्ध कराएगी, ये सोचकर जो अस्पताल पहले प्लेन एम्फेटेरेसिन बी और पोसाकोनाजोल या आइसोवाकोनाजोल लेने से मना कर चुके थे, अब मरीजों के स्वजन से ये दवाएं मंगवा रहे हैं। ब्लैक फंगस के लिए सेंटर ऑफ एक्सीलेंस घोषित आइजीआइएमएस के चिकित्साधीक्षक डॉ. मनीष मंडल प्लेन एम्फेटेरेसिन इंजेक्शन खरीदने को तैयार हो गए हैं। वहीं, एम्स पोसाकोनाजोल इंजेक्शन का असर देने के लिए कुछ रोगियों को यह दवा दे रहा है।

**तीस फीसद रोगियों को लाइपोसोमल की होती जरूरत :** डॉ. मनीष मंडल ने बताया कि प्रदेश में अब तक जितने भी ब्लैक फंगस के रोगी मिले हैं, उनमें से 70 फीसद इस रोग में इस्तेमाल की जाने वाली सामान्य दवाओं से ठीक हो जाते हैं। 30 फीसद को ही लाइपोसोमल एम्फेटेरेसिन बी की जरूरत होती है। इनमें 20 फीसद को 14 या उससे अधिक और शेष 10 फीसद को 50 से अधिक डोज की जरूरत होती है। रोगियों के अनुपात में लाइपोसोमल उपलब्ध नहीं होने पर उनकी जान बचाने को हम प्लेन एम्फेटेरेसिन बी भी खरीदने को तैयार हैं। बताते चलें कि थोक दवा मंडी में उपलब्धता नहीं होने से इसकी ब्लैक मार्केटिंग शुरू हो गई है। वहीं, एम्स पटना ने एंटीफंगल थेरेपी की दूसरी दवा पोसाकोनाजोल के कुछ वायल मंगवाएं हैं। कोरोना प्रभारी डॉ. संजीव कुमार ने बताया कि सबसे बेहतर दवा यदि उपलब्ध नहीं है तो अन्य दवाओं से रोगियों का उपचार मजबूरी है।

**विकल्प पर देरी से निर्णय के कारण बढ़ा संकट :** सहायक औषधि नियंत्रक विश्वजीत दास गुप्ता के अनुसार लाइपोसोमल एम्फेटेरेसिन अब केंद्र सरकार द्वारा ही उपलब्ध कराई जानी है। प्लेन एम्फेटेरेसिन बी व पोसाकोनाजोल जैसे विकल्प की उपलब्धता सुनिश्चित कराने के लिए पहले बड़े अस्पतालों से पूछा गया था, लेकिन उन्होंने मना कर दिया था। उनके मांग करने पर इन दवाओं को बाजार में उपलब्ध कराया जा सकता है।

**लाइपोसोमल तकनीक से घटता है एम्फेटेरेसिन बी का दुष्प्रभाव :** कालाजार समेत गंभीर फंगल इंफेक्शन के उपचार के लिए 1950 में बनाई गई एम्फेटेरेसिन बी इकलौती दवा थी। फंगल के साथ यह सामान्य कोशिकाओं को भी क्षति पहुंचाती थी। इससे किडनी पर गंभीर और लिवर पर हल्के दुष्प्रभाव होते थे। ऐसे में यदि किसी किडनी रोगी को गंभीर फंगल इंफेक्शन होता था, उसके सीरम क्रेटेनिन, पोटेशियम, मैग्नीशियम समेत अन्य जांच कराकर मानकों पर लगातार नजर रखनी पड़ती थी। इस स्थिति में एम्फेटेरेसिन बी की विषाक्तता कम करने के लिए उसे लाइपोसोमल (लिपिड फॉर्मूलेशन) तकनीक पर तैयार कर काफी हद तक न केवल सुरक्षित बना दिया गया, बल्कि यह पूरे अंग के बजाय सिर्फ संक्रमित हिस्से पर ही काम करने लगी।

### खून का प्रवाह रुकने से व्हाइट फंगस हो जाते हैं ब्लैक

जागरण संवाददाता, प्रयागराज : ब्लैक फंगस से आजकल लोगों में घबराहट है। व्हाइट फंगस की चर्चा भी चिकित्सा जगत में है। डाक्टर कहते हैं कि फंगस तो पहले व्हाइट ही होता है और यह अमूमन सभी के शरीर में पाया जाता है। यह ब्लैक तभी होता है जब शरीर में खून का प्रवाह कहीं रुक जाता है या किसी एक स्थान पर खून का ठहराव होने लगता है। उसमें सड़न होने से फंगस ब्लैक हो जाते हैं।

# नई तकनीक से कम होगा हवाई सफर में कंपन

**तलाशी राह** ▶ भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान बांबे के शोधार्थियों ने विकसित किया हल्का और बेहतर पाईजोइलेक्ट्रिक मैटेरियल

## भविष्य में खुल सकते हैं रोबोटिक्स और उपग्रहों के क्षेत्र में नए आयाम

**नई दिल्ली, आइएसडब्ल्यू:** विज्ञानियों की सतत कोशिशों के कारण हवाई यात्रा दिनों-दिन सुगम होती जा रही है। इस दिशा में यात्रा के दौरान कंपन कम महसूस हो, इसके प्रयास किए गए हैं। इसे संभव बनाने के लिए विमान के टरबाइन इंजन और बाहरी वातावरण से उत्पन्न होने वाले कंपन को कम करने के लिए विमान के पंखों (डैने) और कैबिन विंडोज के आसपास छोटी-छोटी डिवाइस लगा दी गई हैं। ये डिवाइस पाईजोइलेक्ट्रिक मैटेरियल से बनी होती हैं। ये डिवाइस इसी सिद्धांत पर काम करती है कि जब इलेक्ट्रिक सिग्नल अप्लाई किया जाता है तो उससे कंपन को कम करने वाला बल उत्पन्न होता है। पाईजोइलेक्ट्रिक मैटेरियल्स

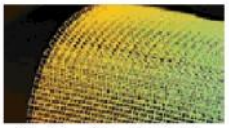

पाईजोइलेक्ट्रिक मैटेरियल से बनी फ्लेक्सिबल शीट। साभार : आइएसडब्ल्यू

सेंसर के रूप में भी प्रयोग होते हैं। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आइआइटी), बांबे के शोधार्थियों ने ऐसे पाईजोइलेक्ट्रिक मैटेरियल को हल्का एवं बेहतर बनाने की संभावनाएं जगाई हैं। इससे भविष्य में रोबोटिक्स और उपग्रहों के क्षेत्र में नए आयाम खुल सकते हैं।

आइआइटी बांबे से जुड़े शोधार्थियों ने एक नया पाईजोइलेक्ट्रिक मैटेरियल विकसित किया है। यह सामान्य रूप से उपयोग में लाई जाने वाली पाईजोइलेक्ट्रिक सिरेमिक्स की तुलना में बेहतर पाईजोइलेक्ट्रिक रिस्पांस देता है। यह मैटेरियल इनपुट इलेक्ट्रिक सिग्नल से भी बड़े पैमाने पर बल उत्पन्न करने में सक्षम है। इसे नोवल ग्रिफिन रिइंफोरस्ड पाईजोइलेक्ट्रिक कंपोजिट (जीआरपीसी) का नाम दिया गया है। इससे संबंधित शोध यूरोपियन जर्नल ऑफ मैकेनिक्स-ए सॉलिड्स में प्रकाशित किया गया है।

यह पीजेडटी (लेड जिरकोनियम टाइटेनेट) का फाइबर है। पीजेडटी बहुत नाजुक होता है और मैटेरियल की क्षमता बढ़ाने के लिए उसी अपॉक्सी की आवश्यकता होती है। इस मैटेरियल के चयन पर आइआइटी बांबे की प्रोफेसर सुमिता नाशकर कहती हैं कि हमने अपॉक्सी को इसलिए चुना, क्योंकि एक तो यह बाजार में आसानी से उपलब्ध है और दूसरे उस पर काम करना भी बहुत सहज है। बेहतर पाईजोइलेक्ट्रिक मैटेरियल की यही विशेषता होती है कि उसमें पाईजोइलेक्ट्रिक रिस्पांस बहुत ज्यादा होता है और उसका प्रत्यास्थता गुणांक (इलास्टिक कोफिशेंट) ऊंचा होता है। इसका अर्थ यही है कि ये विमान में कंपन बढ़ने की स्थिति में उसी इलेक्ट्रिक सिग्नल से पाईजोइलेक्ट्रिक डिवाइस ज्यादा प्रतिरोध बल उत्पन्न कर सकती है।

आइआइटी बांबे के शोधकर्ता डा. किशोर बालासाहेब शिंगारे कहते हैं कि हमारे कंप्यूटेशनल मॉडल्स में पीजेडटी फाइबर और ग्रिफिन नैनो-पार्टिकल्स के विभिन्न रूपों और ओरियंटेशंस की थाह ली। डाक्टर शिंगारे ने जीआरपीसी और पारंपरिक पीजेडटी और अपॉक्सी मैटेरियल के गुण दोषों की विवेचना की। उन्होंने एक विद्युत क्षेत्र उत्पन्न कर मैटेरियल को विभिन्न दिशाओं में फैलाया ताकि उसके द्वारा उत्पन्न प्रभावों को परख सकें। उन्होंने पाया कि पाईजोइलेक्ट्रिक और जीआरपीसी की प्रत्यास्थता विशेषता पारंपरिक पीजेडटी मैटीरियल की तुलना में बेहतर है। डा. शिंगारे कहा कि ग्रेफिन हल्का मैटेरियल होते हुए भी बहुत मजबूत है और जीआरपीसी की बेहतर हुई क्षमताओं की एक बड़ी वजह भी वही होता है।

### वायोमेडिकल डिवाइस में भी हो सकता है इस्तेमाल

शोधकर्ताओं का कहना है कि इसका उपयोग वायोमेडिकल डिवाइसों में कृत्रिम मांसपेशियों के रूप में भी किया जा सकता है, जिन्हें विभिन्न दिशाओं में घुमाया फिराया जाता है। साथ ही, यह अध्ययन भविष्य में अधिक सक्षम पाईजोइलेक्ट्रिक आधारित डिवाइसों के निर्माण में भी अहम भूमिका निभा सकता है। वहीं, रोबोट या सेटेलाइट निर्माण में हल्के मैटेरियल की आवश्यकता बहुत अधिक महसूस की जा रही है। ऐसे में, इस प्रकार के अध्ययन इन आवश्यकताओं की पूर्ति में भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

# विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण

नवनीत शर्मा

**विज्ञान ही हमें प्राकृतिक आपदाओं से बचने और सजग होने का संबल देता है। यही हमें शोषणमुक्त समतामूलक समाज का रास्ता दिखाता देता है। विज्ञान ही है जो मनुष्यों में भेद किए बिना उन्हें एक सजीव प्राणी मात्र मानता है। यह तमाम भेद धर्म, वर्ण, जाति, लिंग, भाषा, राजनैतिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मतभेदों से उबर कर मात्र मनुष्य होने की प्रेरणा देता है।**

महामारी के इस दौर में मानव अस्तित्व को प्राथमिक चुनौती के पश्चात सर्वाधिक खतरा ज्ञान, उसकी अवधारणाओं, संकल्पनाओं और विमर्श को है। किसे ज्ञान समझा जाए और किस ज्ञान के अनुरूप क्या कर्म वांछनीय अथवा अनुकरणीय है? हाथ धोने से लेकर अमुक समिधा कैसे महामारी से बचा सकती है, इस तक का ज्ञान आज सामाजिक विमर्श में मौजूद है। इनमें से किसे वस्तुनिष्ठ माना जाए और किसे आस्था अथवा परिस्थिति जन्य ज्ञान, यह एक अलग बहस को जन्म देता है। विज्ञान जनित ज्ञान की सहायता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह हमें किसी भी 'सूचना' को ज्ञान की कसौटी पर कसने में सहायता करे। किसे विशुद्ध ज्ञान समझा जाए और किसे आस्था या विश्वास का उपागम, इसका फैसला करने की दृष्टि प्रदान करे। विज्ञान ज्ञान संरचना की पद्धति है, जिसके तहत किसी भी निर्णय या नतीजे पर पहुंचने के पहले उसका वस्तुनिष्ठ विश्लेषण और तथ्यपरक मूल्यांकन अपरिहार्य है। विज्ञान किसी स्थापित 'कथ्य' को सिर्फ इसलिए सत्य की संज्ञा नहीं देता क्योंकि वह सर्वविदित है या किसी व्यक्ति विशेष के व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित है, इसे भी सत्य नहीं मानता। विज्ञान में तर्कसंगत तथ्य ही ज्ञान है जो आगमन-निगमन की सान पर खरा उतरता है।

विज्ञान जनित ज्ञान अपनी वैधता अपने को दोहराए जाने और सुगठित होने से प्राप्त करता है। सुगठित से अभिप्राय यह है कि इस तरह की ज्ञान रचना में घुमा कर कान पकड़ने को अवैज्ञानिक माना जाता है और दोहराए जाने से तात्पर्य यह है कि यह ज्ञान, ज्ञाता, उसके लिंग, प्रजाति, यौनिकता, वर्ण, जाति, भाषा, आयु, भौगोलिक और राजनैतिक स्थापना से विमुक्त यदि अमुक प्रक्रिया से अवलोकन करेगा और निश्चित चरणों का अनुपालन करे तो अवश्य ही 'यही' ज्ञान पुनः उत्पादित करेगा। उदाहरण के लिए, यदि विद्युत प्रवाह सुचारु है तो बटन किसने दबाया के बोध से मुक्त बल्ब कमरे को रोशनी से जगमगा देगा, अगर शरीर का तापमान एक निश्चित सीमा से परे है तो उक्त तमाम सामाजिक विभेदों के परचात भी उसे बुखार ही माना जाएगा और उसके उपचार के लिए वैयक्तिकता से परे सबके लिए बुखार-निवारक दवा ही दी जाएगी। इसके कारगर होने के प्रमाण वस्तुनिष्ठ और तथ्यपरक मूल्यांकन से उपजे हैं, यह हमें इस चयन और कर्म के लिए सहायता करते हैं।

विज्ञान जनित ज्ञान की प्रमुख चारित्रिकता में इसका सार्वभौमिक होना भी है, पर साथ ही यह ज्ञान सर्वकालिक होने का दावा नहीं करता। इसकी विशिष्टता यही है कि यह निरंतर प्रयोगधर्मी अवलोकन और अनुभव के आधार पर स्वयं को बदलने में कोताही नहीं करता। यह उन तमाम प्रयोगों और सिद्धांतों का स्वागत करता है जो सरलतम और स्पष्टतम समाधान प्रस्तुत करते हैं। यही उन्मुक्तता इसे चिर स्थिर नहीं होने देती और नूतनता से परिपूर्ण कर परिवर्तनगामी बनाती है। ज्ञान निर्मिती की इस पद्धति से मानव और समाज को मूलतः यही सीखना है कि कोई भी ज्ञान अंतिम नहीं है। प्रत्येक ज्ञान परीक्षण उपरांत ही मान्य है और साथ ही सबसे प्रबलतम सीख यह कि सभी मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और संशय करना कतिपय कर्म नहीं है। प्रश्न करने की मनोवृत्ति और जिज्ञासा ही मनुष्य में मनुजता का भाव लाती है, विज्ञान जनित ज्ञान ही हमें सत्य, मिथ्या, यथार्थ, तर्क, आस्था और हेत्वाभास में अंतर करना सिखाता है। विज्ञान ही हमें प्राकृतिक आपदाओं से बचने और सजग होने का संबल देता है। यही हमें शोषणमुक्त समतामूलक समाज का रास्ता दिखाता देता है। विज्ञान ही है जो मनुष्यों में भेद किए बिना उन्हें एक सजीव प्राणी मात्र मानता है। यह तमाम भेद धर्म, वर्ण, जाति, लिंग, भाषा, राजनैतिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मतभेदों से उबर कर मात्र मनुष्य होने की प्रेरणा देता है। विज्ञान एक भिन्न भाषायी विमर्श भी बुनता है जिसमें पानी, वारि जल, नीर, आब को इनके सामाजिक विभिन्नताओं के बावजूद 'एचटूओ' ही समझता है। यह समता और समानता के अभिरुपण के अलावा सभी चुनौतियों का वस्तुनिष्ठ रूप से मुकाबला करने का अदम्य साहस देता है, चाहे फिर वह अस्पृश्यता, वर्णभेद, लिंगभेद हो या मलेरिया, कालाअजार अथवा कोरोना।

इस संदर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि लगभग सत्तर सालों के निरंतर शिक्षायी प्रयासों और सम्मानजनक साक्षरता दर प्राप्त कर लेने के बावजूद और शिक्षा के मौलिक अधिकार का हिस्सा बनने के एक दशक बाद भी यह दृष्टिकोण क्यों जनमानस में विलुप्त है? इसकी पड़ताल के लिए हमें विज्ञान के पाठ्यक्रम, शिक्षण-अधिगम और मूल्यांकन के तरीकों की विवेचना करनी होगी। साथ ही यह भी देखना होगा कि क्या अन्य विषय जैसे साहित्य, कला, गणित, सामाजिक अध्ययन इत्यादि कहीं इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के निर्माण में कोई बाधा तो नहीं पहुंचाते और विज्ञान शिक्षकों की निर्माण

प्रक्रिया में हम कहां चूक रहे हैं।

इस प्रश्न का उत्तर कि क्या विद्यालय अथवा शिक्षण-अधिगम विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न कर सकता है, को तीन चरणों में देखा जा सकता है। पहला यह कि विज्ञान को प्राथमिक स्तर पर किस तरह समझा अथवा सिखाया जाता है। दूसरा, उच्च शिक्षण और शिक्षण के आने वाले क्रम में विद्यार्थियों को विज्ञान से कैसे जुड़ने की अपेक्षा की जाती है, और तीसरा यह कि किस प्रकार अन्य विषयों और उनके शिक्षण अधिगमों का उपयोग और प्रयास एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण व मानसिकता को आकार देते हैं। प्रारंभिक स्तर पर भारतीय ज्ञान व्यवस्था अथवा विद्यालयी व्यवस्था शिक्षार्थी पर ऐसा विश्वास ही नहीं रखती कि उसका स्वयं का कोई ज्ञान हो सकता है। अधिकतर शिक्षा उपक्रम और प्रक्रियाएं अनुदेशात्मक हैं जो विषय को रटे जाने को बढ़ावा देती हैं। इस पद्धति में अवलोकन और विश्लेषण का कोई स्थान नहीं है। अपने शैक्षणिक ढांचे में अभी हमें 'समस्या समाधान' के तरीकों को सम्मिलित करना शेष है। विज्ञान का एक विषय के रूप में परिचय और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अप्रत्याशित रूप से विज्ञान के इतिहास से सीखे जाने के लिए छोड़ दिया गया है, जिसमें खोज और खोजकर्ता के सही मिलान, महान वैज्ञानिकों की जीवनी, प्रमुख आविष्कार किस वर्ष में हुए और पृथ्वी गोलाकार है, ये कॉपरनिकस ने बताया, आदि को रटने के सहारे किया जाना है। दूसरे चरण में, विद्यार्थियों को 'प्रयोगशाला' में ले जाया जाता है, जिसके अनुसार विज्ञान जैसा जटिल विषय केवल प्रयोगशाला में ही गढ़ा जा सकता है। अब तक विज्ञान और उसके लिए अंग्रेजी में प्रवीणता को भी स्थापित कर दिया जाता है। विज्ञान-शिक्षण और पाठ्यक्रम 'ज्ञान-निर्माण' के तरीकों पर यह उम्मीद से परे है कि हम दैनिक जीवन और विज्ञान के सामंजस्य को बूझ सकें। हम सामान्य विज्ञान का व्यवहार करते हुए यह उम्मीद रखते हैं कि चमत्कारिक रूप से कक्षा कक्ष में 'वैज्ञानिक क्रांति' होगी। विज्ञान शिक्षा में बुनियादी ढांचे और प्रयोगशालाओं के अभाव को नजरअंदाज कर दिया जाता है या इसे विज्ञान शिक्षण के लिए गैरजरूरी मान लिया जाता है। मनुष्य पैदाइशी 'जिज्ञासु' प्रवृत्ति का होता है। बाल स्वभाव की उत्कंठा इसकी परिचायक है। वह जानना चाहता है कि पंछी कैसे उड़ते हैं, फूल क्यों खिलते हैं, पृथ्वी गोल कैसे है आदि। परंतु ये सारे प्रश्न तो पाठ्यक्रम से बाहर और मूल्यांकन से परे हैं। इनको जानना 'व्यर्थ' है। फिर यह भय भी रहता है कि यदि विद्यार्थी को आज ऐसे सवाल पूछने की इजाजत दे दी जाए तो भविष्य में वह जटिल सामाजिक-राजनैतिक प्रश्न करेगा और इस क्रम में यथास्थिति को चुनौती देगा।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिए राज्य, सरकार और समाज को इसको अपना सरोकार बनाना होगा। दाभोलकर, कलबुर्गी और होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम जैसे सरोकारों को पुनर्जीवित करना होगा और साथ ही विज्ञान शिक्षण की प्रविधि, पाठ्यक्रम और मूल्यांकन के तौर-तरीकों में आमूलचूल परिवर्तन करना होगा। यह भारतीय परिदृश्य में जटिल इसलिए है, क्योंकि तमाम समझ-बूझ के बावजूद 'ग्रहण' लगने पर उसे राहु-केतु का प्रभाव मान लेने की सामाजिक दीक्षा हम पर हावी है। महामारी के इस दौर में हम नियमित रूप से कोई 'चमत्कार' होने की अपेक्षा कर रहे हैं, पर यह चमत्कार मानवीय जीवन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के तहत परिवर्तन लाने, निरंतर हाथ धोते रहने और दो गज की दूरी बरतने से ही संभव होगा।